KHAN GLOBAL STUDIES
KGS Campus, Sai Mandir, Musallahpur Hatt, Patna - 6
Mob. No.: +91-8877918018, +91-875735880

GEOGRAPHY

By : Ajit Sir

मिट्टी और मिट्टी की समस्या

मृदा संसाधन / SOIL RESOURCE

मिट्टी (Soil)

मिट्टी (मृदा) पृथ्वी की ऊपरी परत है जो पौधों की वृद्धि के लिये प्राकृतिक स्रोत के रूप में पोषक तत्त्व, जल एवं अन्य खनिज लवण करती है। पृथ्वी की यह ऊपरी परत खनिज कणों तथा जीवांश का एक मिश्रण है जो लाखों वर्षों में निर्मित हुआ है। यह प्रकृति में व्याप्त सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन है। यह सभी मानवीय गतिविधियों तथा प्राकृतिक वनस्पतियों का आधार है। भारत इस संसाधन के मामले में है। उल्लेखनीय है कि भारत का कुल क्षेत्रफल 32.87 लाख वर्ग समृद्ध किमी. से अधिक है, साथ ही यह भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर विश्व का 7वाँ सबसे बड़ा देश है। भारत में इस संसाधन के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की भू-आकृतियाँ, जैसे- पर्वत, पठार, मैदान तथा द्वीप इत्यादि देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में इस भूमि संसाधन का लगभग 43% क्षेत्र मैदानी है, जो कृषि व उद्योग की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वहीं दूसरी ओर 30% क्षेत्र पर पर्वतों का विस्तार है, जो यहाँ से निकलने वाली प्रमुख नदियों- गंगा, यमुना, घाघरा, महानदी, कोशी आदि का प्रमुख क्षेत्र है, साथ ही ये क्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भारतीय-भू-संसाधन के अंतर्गत लगभग 27% क्षेत्र पठारी है, जो अपार धात्विक-अधात्विक खनिजों तथा जीवाष्म ईंधन से समृद्ध क्षेत्र है- जैसे छोटानागपुर पठार। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भारत भूमि संसाधन की दृष्टि से संपन्न है।

मृदा की विशेषताएं (Characteristics of Soil)

मूल अथवा जनक पदार्थ (Parent Material)

मृदा के मूल (जनक) पदार्थ जहां ग्रेनाइट, संगमरमर, स्लेट जैसे कठोर और प्रतिरोधी चट्टान हो सकते हैं, वहीं नवीन ज्वालामुखीय लावा, राख, रूपांतरित (शिष्ट, नाइस) और अवसादी (बलुआ पत्थर, चिकनी मिट्टी, अवसाद और चूना पत्थर), जैसे—अपेक्षाकृत कम कठोर चट्टान भी हो सकते हैं। 'चट्टान' (rock) शब्द का प्रयोग केवल ग्रेनाइट, बलुआ पत्थर जैसे कठोर और उच्च प्रतिरोधक पदार्थों के लिए ही नहीं होता है बल्कि इसका प्रयोग बजरी (Gravel), चिकनी मिट्टी, बालू, रेत, लोएस (Loess) तथा जलोढ़ जैसे कम सघन और निम्न प्रतिरोधी मृदाओं को सूचित करने के लिए भी किया जाता है।

ह्यूमस (Humus)

मृत जैविक पदार्थों (Organic matter) के अपघटन (सड़ने-गलने) के उपरांत जो अंतिम उत्पाद प्राप्त होता है, वह ह्यूमस (Humus) कहलाता है। इसका रंग गाढ़ा भूरा या काला तथा चिपचिपा होता है, जिसका स्वरूप संरचनाविहीन होता है। इसकी उपस्थिति मृदा में या फिर मृदा सतह के नीचे होती है। साधारण मृदा में पाये जाने वाले ह्यूमस (Humus) का रंग काला होता है जिस कारण मृदा, उप-मृदा से अधिक गाढ़े रंग की होती है। यह मृदा की उर्वरता को बनाये रखता है। अलग-अलग मृदाओं में ह्यूमस (Humus) की मात्रा में भिन्नता पायी जाती है।

मृदा संरचना (Soil Texture)

मृदा के कणों का आकार उसकी प्रमुख विशेषता होती है। इस प्रकार चिकनी मिट्टी वाली मृदा को बारीक/महीन, बलुआ को मोटी तथा सिल्ट (silt) को माध्यमिक कहा जा सकता है। मृदा के कणों की माप का मानक पैमाना मिलीमीटर है। वैसे इसकी छोटी इकाई माइक्रॉन, जिसका उपयोग साधारणतया मृदा 'कोलाइड' (Colloids) की माप के लिए किया जाता है।

मृदा बनावट (Soil Structure)

मृदा के कणों की व्यवस्था, क्रम, बनावट या विन्यास मृदा संरचना कहलाती है। बालू, सिल्ट (Silt), चिकनी मिट्टी और (Humus) जिस रूप में आपस में गठित होकर परतों (Peds) का निर्माण करते हैं, उसे मृदा संरचना कहते हैं।

मृदा अम्लता (Soil Acidity)

मृदा की अम्लता और क्षारीयता की माप पी एच मान (pH Value) के रूप में की जाती है जो मृदा के कण में विद्यमान हाइड्रोजन आयन (Hydrogen Ion) के संकेंद्रण को दर्शाता है। शुद्ध जल 10 मिलियन का एक भाग हाइड्रोजन आयन के रूप में विघटित होता है अर्थात् 10-7 और इस तरह इसका पी एच (pH) मान 7 होता है- यह अम्लता के पैमाने की निष्क्रय अवस्था (Neutral State) है। यदि जल में उच्च क्षारीयता हो (जैसे-उसमें कॉस्टिक सोडा घुला हो) तो उसे क्षारीय कहते हैं जिसका पी एच मान (pH Value) 14 होता है। इसके विपरीत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का पी एच मान (PH Value) 3 है। निष्क्रिय मृदा का पी एच मान (pH Value) 7.2, अम्लीय मृदा का 7.2 से कम (कभी-कभी 3 तक) और उच्च क्षारीय मृदा का पी एच मान (pH Value) लगभग 8 या इससे अधिक भी होता है।

मृदा वायु (Soil Air)

मृदा में विद्यमान हवा स्वयं मृदा के लिए और इसमें पाये जाने वाले जीवों दोनों के लिए अति महत्वपूर्ण है। यह हवा मृदा के कुछ पदार्थों को ऑक्सीकरण (Oxidation) की प्रक्रिया द्वारा नाइट्रोजन में परिवर्तित करती है जो पौधों को प्रत्यक्ष पोषण प्रदान करता है। दूसरी तरफ, ऑक्सीकरण की उच्च प्रक्रिया (जैसा कि उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में होता है) मृदा के जैविकीय पदार्थों का तीव्र ह्रास करके उसे अनुर्वरक (Sterile) बना सकती है। मृदा में विद्यमान असंख्य जीवाणुओं (बैक्टीरिया) को आक्सीजन की अनवरत आवश्यकता पड़ती है और इन्हें इसी कारण वायुजीवी (Aerobic) भी कहते हैं। मृदा में विद्यमान पौधों, पशुओं एंव जीव जन्तुओं के अवशेषों को अपघटित करके उपजाऊ ह्यूमस (Humus) के निर्माण में इन जीवाणुओं का भी आंशिक योगदान होता है। हवा की कमी इन जीवाणुओं की इस प्रक्रिया को सीमित करती है।

मृदा जल (Soil Water)

मृदा में विद्यमान जल नीचे की तरफ रिसता रहता है (Percolation)। जल का यह रिसाव मृदा गठन (Structure) पर निर्भर करता है। मृदा में जल की उपस्थिति शून्य से लेकर जल-जमाव (Water-logging) की स्थिति तक हो सकती है। शुष्क जलवायु क्षेत्रों में जहां जल की अनुपस्थिति मृदा में किसी भी जीवन की संभावना नहीं छोड़ता वहीं जल जमाव की स्थिति में हवा की अनुपस्थिति जीवाणुओं द्वारा किए जाने वाले अपघटन (Decomposition) नहीं होने देता है। इस प्रकार मृदा में जल की मात्रा बहुत बड़ी भूमिका निभाती है।

मृदा स्तर (Soil Horizon)

मृदा की कोई परत अपने ऊपर या नीचे की परतों से भौतिक और रासायनिक रूप से भिन्न हो सकती है। इन भिन्न परतों को मृदा स्तर कहते हैं। मृदा स्तर लगभग पृथ्वी की सतह के समांतर होता है और इसके परतों की विशेषताओं में स्पष्ट भिन्नता होती है।

मृदा परिच्छेदिका (Soil Bed / Soil Profile)

मृदा परिच्छेदिका कई मृदा संस्तरों (Soil Horizons) से मिलकर बनती है-

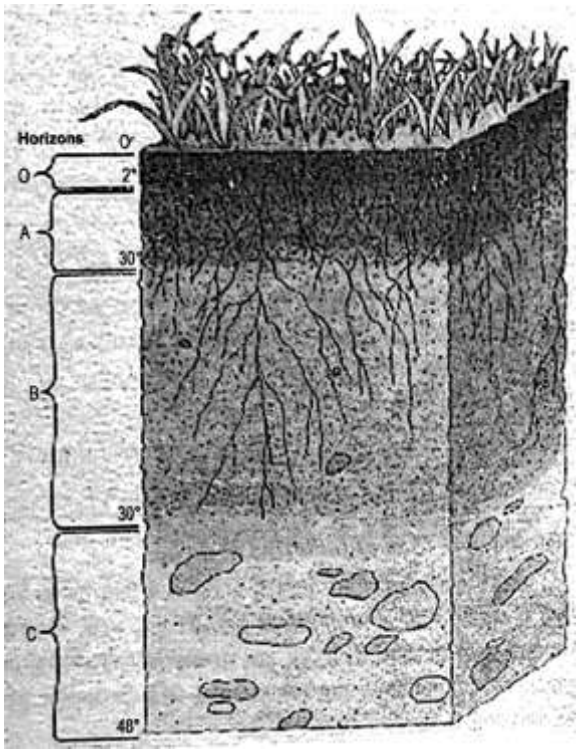

मृदा परिच्छेदिका

स्तर - 0

- ज़मीनी स्तर पर ह्यूमस, जैविक सामग्री की प्रचुरता।

स्तर - A

- ऊपरी मृदा।
- आमतौर पर काले रंग की एवं कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध।
- इस स्तर को निक्षालन का क्षेत्र भी कहा जाता है।
- खनिज पदार्थ और जैविक पदार्थ साथ-साथ मिलते हैं।
- पौधों की अधिकांश जड़ें इसी में पाई जाती हैं।

स्तर - B

- भूमि के नीचे की मृदा, चिकनी मृदा एवं गाद।
- इस स्तर को जल संचयन का क्षेत्र भी कहते हैं और साथ ही यह स्तर अपने से ऊपरी स्तर के सभी निक्षालित खनिज संगृहीत कर लेता है।
- यह स्तर घुलनशील खनिजों, जैसे- कैल्सिलाइट से मिलकर बना होता है।
- इस प्रकार इसमें लोहा, एल्यूमिनियम व अन्य जैविक मिश्रण संगृहीत होते हैं।

स्तर - C

- ऋतुक्षरित खराब चट्टान।
- यह चट्टान मृदा परिच्छेदिका के नीचे स्थित होती है।

मृदा के पोषक तत्त्व एवं उनके कार्य

तत्त्व	कार्य
फॉस्फोरस (P)	जड़ों का विकास, ऊर्जा संग्रहण, शीघ्र फल पकाने में
नाइट्रोजन (N)	वृद्धि एवं प्रोटीन उत्पादन
पोटैशियम (K)	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, पानी का उचित अवशोषण
कैल्सियम (Ca)	कोशिका संरचना एवं विभाजन
सल्फर (S)	प्रोटीन एवं तेल निर्माण में सहायक
मैग्नीशियम (Mg)	पौधे में लोहे के अवशोषण में सहायक, क्लोरोफिल का मुख्य तत्त्व
आयरन (Fe)	श्वसन एवं क्लोरोफिल उत्पादन
मॉलिब्डेनम (Mo)	दलहनों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण
कोबाल्ट (Co)	नाइट्रोजन स्थिरीकरण, विटामिन B_{12} का निर्माण
सोडियम (Na)	सूखा प्रतिरोध में वृद्धि, स्टोमैटा को खोलने में सहायक
ज़िंक (Zn)	एंजाइम सक्रियता एवं प्रोटीन संश्लेषण

भारत की मृदा (Soil of India)

भारतीय मृदा वर्गीकरण की दिशा में अनेक कार्य किये गए हैं। इस संदर्भ में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा 1956 में किया गया कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। ICAR द्वारा संरचनात्मक मृदा और खनिज मृदा के रंग व संसाधनात्मक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भारतीय मृदा को आठ वर्गों में विभाजित किया गया है-

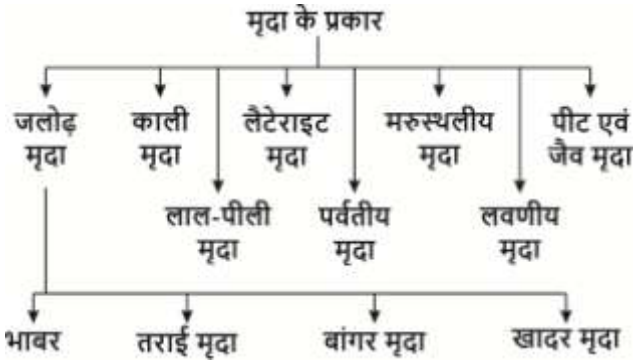

जलोढ़ मृदा (Alluvial soil)

- इस मृदा का विस्तार भारत के कुल क्षेत्रफल के लगभग 43.4% भाग में है।
- इस मृदा का निर्माण नदियों द्वारा लाए गए तलछट के निक्षेपण से हुआ है। इस प्रकार यह एक अक्षेत्रीय मृदा है।
- इस मृदा के दो प्रमुख क्षेत्र हैं-
  1. उत्तर का विशाल मैदान
  2. तटवर्ती मैदान
- जलोढ़ मृदा नदियों की घाटियों एवं डेल्टाई भाग में भी पाई जाती है।
- इस मृदा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं ह्यूमस की कमी होती है, परंतु इस मृदा में पोटाश एवं चूने का पर्याप्त अंश होता है।
- यह सर्वाधिक उपजाऊ मृदा होती है।
- इस मृदा को काँप मृदा या कछारी मृदा भी कहा जाता है।

जलोढ़ मृदा

- जलोढ़ मृदा को सामान्यतः 4 वर्गों में विभाजित किया जाता है- 1. भाबर, 2. तराई, 3. बांगर, 4. खादर

भाबर मृदा

- यह लघु हिमालय और शिवालिक पहाड़ियों के दक्षिणी भाग में पाई जाती है।
- इस मृदा में मोटे कंकड़, पत्थर और मिश्रित तलछट आदि पाए जाते हैं इसलिये इसमें नदियाँ विलुप्त हो जाती हैं।
- यह मृदा कृषि के लिये उपयुक्त नहीं होती है। इस मृदा में लंबी जड़ों वाले बड़े पेड़ पाए जाते हैं।

तराई मृदा

- यह भारत के तराई प्रदेश में पाई जाती है। इस मृदा में महीन कंकड़, रेत, चिकनी मृदा, छोटे-छोटे पत्थर आदि पाए जाते हैं।
- बड़े-बड़े चट्टानी कणों की उपस्थिति के कारण इस मृदा की जलग्रहण क्षमता अधिक होती है।
- इस मृदा में चूने की मात्रा अधिक पाई जाती है, जिसके कारण यह मृदा गन्ने की कृषि के लिये काफी उपयुक्त होती है।

बांगर मृदा

- यह पुरानी जलोढ़ मृदा है। यह मृदा सतलुज एवं गंगा के मैदान के ऊपरी भाग तथा नदियों के मध्यवर्ती भाग में पाई जाती है, जहाँ सामान्यतः बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता है।
- इस मृदा का रंग गहरा होता है। इसमें चीका एवं बालू की मात्रा लगभग बराबर होती है।

- बांगर मृदा की सतह के नीचे चूने की गाँठें पाई जाती हैं जिन्हें कंकर (Kankar) के नाम से जाना जाता है।
- बांगर मृदा रबी की फसलों की कृषि के लिये अधिक उपयुक्त इसमें गेहूं, कपास, तिलहन, दलहन एवं मक्का जैसी फसलों की कृषि बहुतायत से होती है।
- पूर्वी तटीय मैदान के ऊपरी भाग में भी बांगर मृदा पाई जाती ह जिसमें तंबाकू व मक्का की कृषि अधिकांशत: की जाती है।
- हाल के वर्षों में इस मृदा के क्षेत्र में कपास एवं गन्ने की कृषि को भी प्रधानता दी जा रही है।

खादर मृदा

- यह नवीन जलोढ़ मृदा है। जिस क्षेत्र में यह मृदा पाई जाती है वहाँ बाढ़ का पानी लगभग प्रत्येक वर्ष पहुँचने के कारण इस मृदा का नवीनीकरण होता रहता है।
- इस मृदा में सिल्ट एवं क्ले तुलनात्मक रूप से अधिक मात्रा में पाईं जाती हैं तथा इस मृदा का रंग हल्का होता है।
- इस मृदा का विस्तार निम्न गंगा के मैदान, ब्रह्मपुत्र घाटी एवं डेल्टाई क्षेत्रों में है।
- यह मृदा खरीफ फसलों, मुख्यतः चावल एवं जूट की कृषि के लिये विशेष रूप से उपयुक्त होती है।

काली मृदा (Black Soil)

- इस मृदा का निर्माण बेसाल्ट चट्टानों के विखंडन से हुआ है जिसके कारण इस मृदा के कण बारीक होते हैं।
- टिटानिफेरस लवणों की उपस्थिति के कारण इस मृदा का रंग काला होता है।
- इस मृदा को रेगुर मृदा भी कहा जाता है।
- क्रेब्स के अनुसार, रेगुर मृदा अनिवार्य रूप से एक परिपक्व मृदा होती है।
- यह मुदा गीली होने पर काफी चिपचिपी होती है, लेकिन शुष्क हो जाने के बाद सिकुड़ने के कारण इसमें लंबी एवं गहरी दरारें पड़ जाती हैं। इसलिये इसे स्वत: जुताई करने वाली मृदा भी कहा जाता है।
- इस मृदा में लोहा, एल्युमीनियम, पोटाश एवं चूने की अधिकता होती है तथा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं जैविक तत्त्वों की कमी होती है।
- यह मृदा अत्यधिक उपजाऊ होती है। उच्च क्षेत्रों की काली मृदा की उर्वरता निम्न क्षेत्रों की काली मृदा की तुलना में कम होती है।
- यह मृदा मुख्यतः महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तरी कर्नाटक, उत्तरी आंध्र प्रदेश, उत्तर-पश्चिमी तमिलनाडु, दक्षिण-पूर्वी राजस्थान आदि क्षेत्रों में पाई जाती है।
- इस मृदा की जलधारण क्षमता अधिक है। यही कारण है कि यह मृदा शुष्क कृषि के लिये अनुकूल है।
- यह मृदा कपास की कृषि के लिये उत्तम होती है। इसके अलावा यह मृदा मूंगफली, तंबाकू, गन्ना, दलहन एवं तिलहन की कृषि के लिये अनुकूल होती है।
- यह मृदा एक क्षेत्रीय मृदा है।

लाल-पीली मुदा (Red-Yellow Soil)

- इस मृदा का निर्माण प्राचीन आर्कियन एवं धारवाड़ चट्टानों से हुआ है।
- लाल-पीली मृदा में लाल रंग लोहे के ऑक्सीकरण तथा पीला रंग फेरिक ऑक्साइड (Fe,O) के जलयोजन के कारण होता है। यह अपक्षालित या निक्षालित (Leaching) मृदा है।
- इस मृदा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं ह्यूमस की कमी होती है।
- ऊँचाई वाले भागों में यह मृदा पतली, कंकड़ीली व हल्के रंग की होती है, जबकि निम्न मैदानों की मृदा गहरे रंग की एवं तुलनात्मक रूप से अधिक उपजाऊ होती है।
- यह मृदा झारखंड के संथाल परगना एवं छोटानागपुर का पठार, पश्चिम बंगाल के पठारी क्षेत्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, दक्षिण-पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी एवं दक्षिणी आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के अधिकांश भाग ओडिशा एवं उत्तर प्रदेश के झाँसी, ललितपुर, मिर्ज़ापुर और बाँदा में पाई जाती है। पश्चिमी घाट के गिरिपद क्षेत्र की एक लंबी पट्टी में लाल दोमट मृदा पाई जाती है।
- चूने की कमी के कारण यह आंशिक रूप से अम्लीय होती है। पोषक तत्त्वों की कमी के कारण यह कम उपजाऊ होती है।
- लाल-पीली मृदा का सर्वाधिक क्षेत्रफल कर्नाटक में है।
- इस प्रकार की मृदा में मुख्यतः दलहन, चावल एवं मोटे अनाज की कृषि की जाती है।
- हाल के वर्षों में तमिलनाडु एवं कर्नाटक में इस मृदा में रबड़ एवं कहवा के बागानों का विकास किया जा रहा है।

लैटेराइट मृदा (Laterite Soil)

- यह स्थानबद्ध मृदा है।
- यह मृदा वास्तव में लाल मृदा का ही एक विशिष्ट प्रकार है, जिसका निर्माण मानसूनी जलवायु की विशिष्टता का परिणाम है।
- यह मृदा विशिष्ट प्रकार की ईंट वाली लाल रंग की होती है।
- यह मृदा उष्णकटिबंधीय वर्षा वाले क्षेत्र में अधिक पाई जाती है। अधिक वर्षा के कारण लैटेराइट चट्टानों पर अपक्षालन (Leaching) की क्रिया के फलस्वरूप इस मृदा का निर्माण होता है।
- अपक्षालित प्रक्रिया द्वारा सिलिका व चूने के अंश रिसकर नीचे चले जाते हैं एवं मृदा के रूप में लोहा और एल्युमीनियम के यौगिक बचे रह जाते हैं।
- शुष्क मौसम में यह मृदा सूखकर ईंट की तरह कठोर हो जाती है। एवं गीली होने पर स्याही की तरह कोमल हो जाती है।
- इस मृदा में चूना, नाइट्रोजन, पोटाश एवं ह्यूमस की कमी होती है। चूने की कमी के कारण यह मृदा अम्लीय हो जाती है। इसमें लोहा एवं एल्युमीनियम की अधिकता होती है।
- इस मृदा की उर्वरा शक्ति लाल मृदा से कम होती है।
- इस मृदा में मोटे अनाज, दलहन एवं काजू की कृषि की जाती है। अम्लीय होने के कारण इस मृदा में चाय की भी कृषि की जाती है।
- यह मृदा मुख्य रूप से पूर्वी एवं पश्चिमी घाट, राजमहल की पहाड़ी, केरल, कर्नाटक के कुछ पाट प्रदेश, असम के कुछ क्षेत्र एवं मेघालय के पठार में पाई जाती है।
- इस मृदा का सर्वाधिक विस्तार केरल और कर्नाटक में है।

पर्वतीय मृदा (Hilly Soil)

- इस मृदा को वनीय मृदा भी कहा जाता है।
- पर्वतीय ढालों पर विकसित होने के कारण इस मृदा की परत पतली होती है।
- वर्षा की अधिकता वाले क्षेत्रों में अपक्षालन के कारण यह मृदा अम्लीय होती है।

- इस मृदा में पोटाश, फॉस्फोरस एवं चूने की कमी होती है।
- ढालों पर स्थित होने के कारण यह मृदा बागानी फसलों की कृषि के लिये विशेष रूप से उपयोगी होती है।
- भारत में चाय, कहवा, मसाले एवं फलों की कृषि इसी मृदा में की जाती है।
- जनजातियों द्वारा झूम कृषि इस मृदा में की जाती है।
- वनों की कटाई एवं कृषि कार्य के विस्तार से इस मृदा प्रदेश में भूमि क्षरण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है। यही कारण है कि इस मृदा प्रदेश में वनीकरण को प्रधानता दी गई है।
- यह मृदा मुख्यतः हिमालय क्षेत्र, उत्तर-पूर्वी भारत के पहाड़ी क्षेत्र, पश्चिमी एवं पूर्वी घाट तथा प्रायद्वीपीय भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है।

मृदा गठन के वर्ग एवं व्यास	
कण का नाम	**व्यास (मिलीमीटर)**
बालू	2.0-1.0
बहुत मोटी बालू	1.0-0.5
मोटी बालू	0.5-0.25
महीन / बारीक बालू	0.25-0.10
बहुत बारीक बालू	0.10-0.05
गाद (Silt)	0.050-0.002
मृत्तिका (Clay)	0.002 से कम

मरुस्थलीय मृदा (Desert Soil)

- यह मृदा 50 सेमी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाई जाती है।
- यह वास्तव में बलुई मृदा है जिसमें लोहा एवं फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में होता है, परंतु नाइट्रोजन एवं ह्यूमस की कमी होती है।
- इस मृदा में मुख्यतः मोटे अनाजों की कृषि की जाती है, परंतु जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है वहाँ कपास एव गहू की भी कृषि की जाती है।
- हाल के वर्षों में राजस्थान के श्रीगंगानगर ज़िले में धान एवं गन्ने की भी कृषि प्रारंभ की गई है।
- यह मृदा मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान, दक्षिणी पंजाब, दक्षिणी हरियाणा एवं उत्तरी गुजरात में पाई जाती है।

लवणीय मृदा (Saline Soil)

- लवणीय मृदा को क्षारीय मृदा, रेह मृदा, ऊसर मृदा एवं कल्लर मृदा के नाम से भी जाना जाता है।
- क्षारीय मृदा वैसे क्षेत्र में पाई जाती है जहाँ पर जल के निकास की सुविधा नहीं होती है।
- इस मृदा में सोडियम, कैल्सियम एवं पोटैशियम की मात्रा अधिक होती है, इसलिये यह क्षारीय हो जाती है।
- भारत में क्षारीय मृदा गुजरात, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी राजस्थान एवं केरल के तटवर्ती क्षेत्र में पाई जाती है।
- क्षारीय मृदा में नारियल एवं तेलताड़ की अच्छी कृषि की जाती है।
- यह एक अनुपजाऊ मृदा है।
- इस मृदा में हरी घास एवं जिप्सम का प्रयोग करके इसकी क्षारीयता को कम किया जा सकता है।

पीट एवं जैव मृदा (Peat and Biotic Soil)

- दलदली क्षेत्रों में काफी अधिक मात्रा में जैविक पदार्थों के जमा हो जाने से इस मृदा का निर्माण होता है।
- इस प्रकार की मृदा काली, भारी एवं अम्लीय होती है।
- यह मृदा मुख्यतः केरल के अलेप्पी जिले, उत्तराखंड के अल्मोड़ा, सुंदरबन डेल्टा एवं अन्य निम्न डेल्टाई क्षेत्रों में पाई जाती है।

- केरल में इस मृदा में नमक का अंश भी होता है, केरल में इसे कारी कहा जाता है।
- इस मृदा में फॉस्फेट एवं पोटाश की कमी होती है।
- तराई प्रदेश में इस मृदा में गन्ने की कृषि की जाती है।
- इस मृदा में मैंग्रोव का विकास अधिक होता है।

करेवा मृदाएं (Karewa Soils)

करेवा मृदाएं सरोवरीय निक्षेपों से बनी हैं जो कश्मीर घाटी तथा जम्मू मंडल के डोडा जिले की भद्रवाह घाटी में पायी जाती हैं। ये मृदाएं चपटी सतहों वाली टीलों (mounds) के रूप में कश्मीर घाटी की सीमाओं पर फैली हैं। इन मृदाओं का निर्माण महीन गाद, दुमट, बालू एवं कंकड़ों से हुआ है। इनमें स्तनधारियों के जीवाश्म और पीट विद्यमान हैं। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार पूरी कश्मीर घाटी अभिनूतन काल (Pleistocene Period) में जल के नीचे रही थी। आने वाले समय में अंतर्जात बलों द्वारा बारामुला खड्ड (gorge) का निर्माण हुआ तथा इस झील का जल इसके द्वारा निकासी हुआ। इस झील या सरोवर में निक्षेपित पदार्थों से ही करेवा की रचना हुई।

भारतीय मृदाओं की समस्याएं (Problems of Indian Soils)

किसी क्षेत्र के मृदा को प्राकृतिक शक्तियां विनष्ट करती रहती हैं, यथा- मृदा विनाश एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। वैसे वनों की कटाई, पशुओं द्वारा की गयी अत्यधिक चराई और कृषिगत कार्यों के लिए अवैज्ञानिक भू-उपयोग इत्यादि मानवीय गतिविधियों द्वारा भी मृदा को भारी क्षति पहुंचायी जाती है। भारतीय मृदाओं की प्रमुख समस्याएं हैं- (i) मृदा अपरदन, (ii) घटती मृदा उर्वरता. (iii) जल-जमाव (iv) लवणीयता एवं क्षारीयता, (v) मरुस्थलीयकरण।

मृदा अपरदन (क्षरण) (Soil Erosion)

- प्रवाहित होते जल या पवन द्वारा मृदा की ऊपरी परत का कटाव या क्षरण मृदा अपरदन कहलाता है।
- जब मृदा अपरदन की दर मृदा निर्माण की दर से अधिक हो जाती है तब मृदा निम्नीकरण की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है।
- मृदा निम्नीकरण से तात्पर्य मृदा की गुणवत्ता एवं उर्वरता में हास से है।
- हाल के वर्षों में अवैज्ञानिक क्रियाकलापों के कारण मृदा अपरदन एक आपदा का रूप लेता जा रहा है।

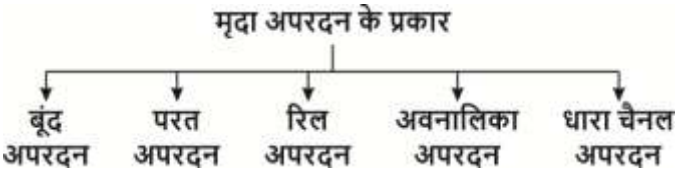

बूंद अपरदन (Splash Erosion) : यह मृदा अपरदन का प्रथम चरण है। इसके अंतर्गत सूखी मिट्टी पर बारिश की बूंदों के प्रतिघात से मृदा कण वियोजित हो जाते हैं, जिससे मृदा की ऊपरी परत विघटित हो जाती है।

परत अपरदन (Sheet Erosion) : अपरदन के अगले चरण में बूंदों के निरंतर प्रहार के कारण पतली परतों के रूप में मृदा का कटाव होने लगता है। यह सामान्यतः समतल भूमियों पर मूसलाधार वर्षा के पश्चात् होता है। यद्यपि यह अतिसूक्ष्म प्रक्रिया है, किंतु अधिक हानिकारक होती है, क्योंकि मृदा की सूक्ष्म और अति उर्वर परत का अपरदन हो जाता है।

रिल अपरदन (Rill Erosion) : अपरदन के इस प्रकार के अंतर्ग .तेज़ गति से बहता हुआ जल छोटी एवं कम गहरी नालियाँ बनाकर बहने लगता है। यह आमतौर पर कृषि भूमि और अतिचारित भूमियों पर देखने को मिलता है।

अवनालिका अपरदन (Gully Erosion) : जब रिल अपरदन की नालियाँ बड़ी और विस्तृत हो जाती हैं तो कृषि भूमियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में खंडित कर देती हैं, जिससे वे कृषि हेतु अनुपयुक्त हो जाती जिस प्रदेश में इनकी संख्या अधिक होती है, उसे 'उत्खात भूमि' कहा जाता है, उदाहरण- चंबल का बीहड़ प्रदेश।

धारा चैनल अपरदन (Stream Channel Erosion): इसमें जल एक मोटी धारा के रूप में प्रवाहित होने लगता है और चैनल को तब तक अपरदित करता है, जब तक कि वह स्थिर ढाल प्राप्त नहीं कर लेता है।

मृदा अपरदन के कारण (Causes of Soil Erosion)

- **निर्वनीकरण :** वन पानी के बहाव तथा वायु की गति को कम करता है। वृक्षों की जड़ें मिट्टी को जकड़कर रखती हैं, किंतु वृक्षों के अविवेकपूर्ण दोहन तथा कटाई से अपरदन की तीव्रता बढ़ती है।
- **अत्यधिक पशुचारण :** इससे मिट्टी का गठन ढीला हो जाता है फलत: जलीय एवं वायु अपरदन तीव्र हो जाता है।
- **जलीय अपरदन :** जल द्वारा मिट्टी के घुलनशील पदार्थों को घुलाकर एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये परिवहित करना जलीय अपरदन कहलाता है। जल के भार / चोट से उत्पन्न दबाव के कारण मिट्टी का स्थानांतरण 'जलगति क्रिया' कहलाती है। इसमें वर्षा की प्रमुख भूमिका होती है, क्योंकि अत्यधिक वर्षा वाले स्थानों में वर्षा के जल तथा बाढ़ से समस्याग्रस्त होने के बाद मृदा अपरदन की संभावना सर्वाधिक होती है।
- **वायु अपरदन :** तीव्र पवनों द्वारा सूक्ष्म कणों को अपने साथ उड़ाकर ले जाना 'अपवहन' कहलाता है। मृदा अपरदन चक्रवातों द्वारा भी होता है जिसमें चक्रवात मिट्टी को उड़ाकर छोटे गर्त बना देते हैं।
- भारत में मई तथा जून माह में रबी की फसलों की कटाई के पश्चात् सतलुज-गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान की उपजाऊ मिट्टी का भी पवन द्वारा पर्याप्त मात्रा में दोहन / अपरदन होता है।
- **हिमानी अपरदन :** हिमालय में हिमरेखा के नीचे बहने वाली बर्फ तथा जल को हिमनद कहा जाता है। ये चट्टानों एवं मिट्टी को काटकर निचली घाटी में जमा कर देते हैं, जिन्हें 'हिमोढ़' कहते हैं।
- **झूम कृषि :** झूम कृषि के दौरान जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर कृषि करने के लिये वृक्षों का कटाव किया जाता है तो वनों के कटाव से अपरदन की दर में वृद्धि हो जाती है तथा मिट्टी के पोषक तत्त्व बह जाते हैं।
- **भूस्खलन अपरदन :** भूस्खलन अपरदन पहाड़ी सतह या पर्वतीय ढाल के नीचे धँसने के कारण होता है। सामान्यतः भूस्खलन ढालों पर कटाई, खुदाई या कमजोर भूगर्भ ढाल होने के कारण होता है।

मृदा अपरदन और उसका प्रभाव

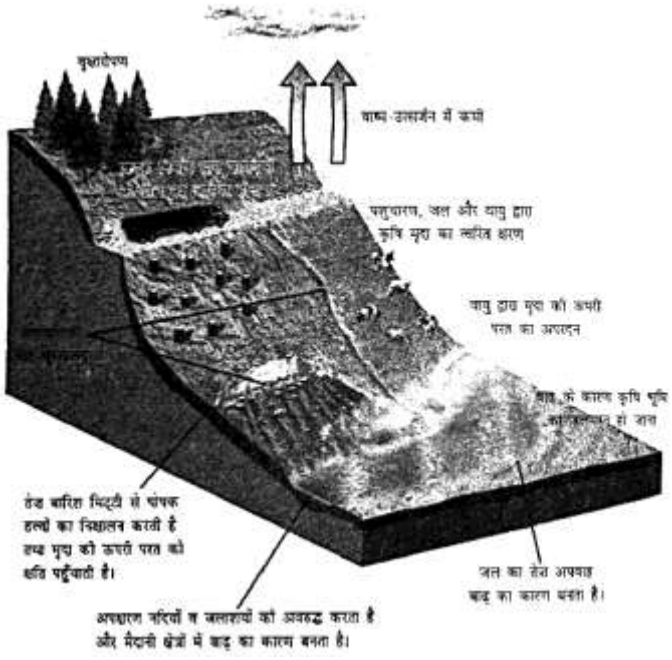

मृदा अपरदन का प्रभाव (Impact of Soil Erosion)

- जब किसी स्थान पर मृदा अपरदन होता है तो इससे फसलों के विकास तथा उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है।
- मृदा अपरदन के कारण मृदा की हानि होती है, जिससे फसलों के लिये जैविक पदार्थ तथा पोषक तत्त्वों की कमी हो जाती है फलत: फसल उत्पादन में कमी होती है।
- मृदा अपरदन के कारण जब मृदा के कण स्थानांतरित होकर एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं तो उस स्थान पर मृदा की परत मोटी हो जाती है, फलतः बीजों को अंकुरित होने के लिये मोटी परत को भेदना पड़ता है।
- अपरदन के प्रभाव से मरुभूमि का विस्तार होता है।

मृदा अपरदन से प्रभावित क्षेत्र	
जल अपरदन से प्रभावित क्षेत्र	• शिवालिक एवं हिमालय पर्वत, मुख्यतः मध्य एवं पूर्वी भाग • यमुना एवं चंबल नदी की घाटी • तमिलनाडु एवं पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्र • पश्चिमी घाट पर्वतीय क्षेत्र • उत्तर प्रदेश का ब्रजभूमि क्षेत्र • उत्तरी-पूर्वी भारत
वायु अपरदन से प्रभावित क्षेत्र	• पश्चिमी राजस्थान • दक्षिणी हरियाणा • दक्षिणी पंजाब
वायु एवं जल दोनों से मृदा अपरदन वाले प्रभावित क्षेत्र	• भारत के मैदानी भागों में वर्षा ऋतु में जल द्वारा एवं शुष्क मौसम में वायु द्वारा अपरदन की क्रिया होती है।

घटती मृदा उर्वरता (Declining Soil Fertility)

भारतीय कृषि भूमि का सैकड़ों वर्षों से उपयोग में लाये जाने तथा बहुफसल पद्धति के अनुसरण के कारणों से मृदा की प्राकृतिक उर्वरता तेजी से घटती जा रही है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों द्वारा मृदा की घटती उर्वरता की आम शिकायत की जाती है। इन क्षेत्रों से यह रिपोर्ट मिली है कि किसानों द्वारा पिछले वर्ष के उत्पाद स्तर को प्राप्त करने के लिए हर अगले वर्ष अपेक्षाकृत अधिक लागत (inputs) का उपयोग किया जा रहा है। सत्य तो यह है कि अवैज्ञानिक फसल चक्र (गेहूं और चावल) की दशकों से की जा रही पुनरावृत्ति के कारण भारत के महान मैदानों के मृदा की उर्वरता का उच्च ह्रास हुआ है।

वैसी फसलें जो मृदा उर्वरता का सर्वांगीण दोहन करती हैं अगर उनके बाद भूमि में दलहन, फलीदार (leguminous) फसलों की खेती की जाए तो प्रभावित क्षेत्रों की मृदा उर्वरता का संवर्धन संभव है।

जल- जमाव (Water-logging)

किसी क्षेत्र को जल-जमाव (water-logging) के अंतर्गत तब मानते हैं जब उस क्षेत्र का जल स्तर उस हद तक बढ़ गया हो जब फसलों की जड़ों के मृदा रंध्र संतृप्त हो जाते हैं। इस स्थिति की प्राप्ति के फलस्वरूप मृदा में हवा का सामान्य चक्र बाधित होता है तथा इसमें ऑक्सीजन की मात्रा घटने लगती है और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है।

भारत में ऐसा बहुत बड़ा क्षेत्र है जहां अपवाह की अनुपयुक्ता के कारण जल जमाव की स्थिति बनी रहती है। जलभराव के मुख्य कारण हैं - 1. नहरों से जल का रिसाव, 2. फार्म जल का अनुचित प्रबंधन 3. जल निकास की कमी, 4. प्राकृतिक निकास से छेड़छाड़, 5. निकास नहरों के तट पर गलत तरीके से की जाने वाली खेती, 6. समुद्री डेल्टा चक्र में बदलाव, 7. तटीय क्षेत्रों में चक्रवाती लहरों द्वारा सागरीय बाढ़ें।

जल-जमाव के कारण इंदिरा गांधी नहर (राजस्थान) के कुछ भाग, पंजाब के नहरों के तटीय भाग, हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्यों में कृषिगत भूमि का एक बहुत बड़ा भाग जल जमाव की समस्या से ग्रस्त है। अपवाह तंत्र की उपयुक्त व्यवस्था और रिसाव को कम करने के लिए नहरों के अस्तरण (lining) द्वारा जल जमाव से प्रभावित क्षेत्रों को कृषि के लिए पुन: उपयुक्त बनाया जा सकता है।

लवणीयता एवं क्षारीयता (Salinity and Alkalinity)

मृदाओं में लवणीयता एवं क्षारीयता (salinity and alkalinity) की समस्या उन क्षेत्रों में होती है, जहां वर्षा अपेक्षतया कम होती है तथा वाष्पीकरण की दर वर्षण दर से अधिक होती है। ऐसी स्थिति में केसिका क्रिया (capillary action) द्वारा मृदा में विद्यमान होता है।

मरुस्थलीकरण (Desertification)

किसी मरुस्थल के आस-पास गैर-मरुस्थलीय मार्गों में मरुस्थल के विस्तार को मरुस्थलीकरण (desertification) कहा जाता है। राजस्थान के थार मरुस्थल के पूर्वी और उत्तरी सीमावर्ती क्षेत्रों में पड़ोसी राज्यों के कई भागों में इसकी समस्या विद्यमान है। मरुस्थल की सीमाओं पर हवा की दिशा के लंबवत् घने पत्तों वाले से मरुस्थलीकरण को रोकने में अच्छी सफलता प्राप्त होती है।

- **लवणीकरण एवं क्षारीयकरण :** मृदा निम्नीकरण की यह समस्या मुख्यतः हरित क्रांति वाले क्षेत्रों तथा तटीय क्षेत्रों में देखने को मिलती है। उत्तर-पश्चिम भारत के हरित क्रांति के क्षेत्रों, जैसे- उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान के गंगानगर जिले में अति सिंचाई के कारण मृदाओं के अपारगम्य हो जाने तथा प्राकृतिक अपवाह में बाधा, नहरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में जल जमाव के कारणों से मिट्टी क्रमशः लवणीय एवं क्षारीय होती जा रही है।
- **अपशिष्ट पदार्थों का जमाव :** खनन, उद्योग, नगर आदि से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थों को उपजाऊ कृषि भूमि पर जमा किये जाने से अनेक क्षेत्रों में मृदा निम्नीकरण की समस्या उत्पन्न हुई है।
- **कृषि भूमि का अवैज्ञानिक प्रयोग :** कुछ विशेष फसलों की बार-बार कृषि, फसल चक्र को न अपनाना, मृदा एवं जल प्रबंधन की अपेक्षा रासायनिक उर्वरक एवं रासायनिक कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण मृदा की रासायनिक संरचना में असंतुलन आदि कारक मृदा निम्नीकरण के लिये उत्तरदायी हैं।
- हरित क्रांति से संबंधित उत्तर-पश्चिमी भारतीय राज्यों में सिंचाई, उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा निम्नीकरण बहुत तेज़ी से हुआ है। यहाँ की मृदा में लवणों की मात्रा में वृद्धि के कारण मृदा की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु आदि राज्यों में धान की फसलों में अत्यधिक कीटनाशकों के प्रयोग से भी भूमि की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

मृदा अपरदन के परिणाम (Consequences of Soil Erosion)

मृदा अपरदन तत्काल भूमि में उत्पादन को बढ़ाने और संपोषित करने वाले पोषक तत्वों की कमी करता है तथा अंततः पारिस्थितिकीय असंतुलन (Ecological Imbalance) का कारण बनता है। मृदा अपरदन के प्रमुख परिणामों को निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

(i) मृदा की उर्वर ऊपरी सतह का ह्रास जिससे धीरे-धीरे मृदा की उर्वरता और कृषि उत्पादकता में कमी आती है।

(ii) निक्षालन (leaching) एवं जल जमाव (Water-logging) द्वारा मृदा के पोषक तत्वों का ह्रास।
(iii) भूमिगत जल के स्तर में गिरावट तथा मृदा में नमी का ह्रास |
(iv) वनस्पतियों का सूखना तथा शुष्क भूमि के क्षेत्र में विस्तार।
(v) सूखा एवं बाढ़ की बारंबारता में वृद्धि।
(vi) नदियों एवं नहरों की पेटियों में अवसादों का जमाव (silting)।
(vii) भू-स्खलन की बारंबारता में वृद्धि।
(viii) अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास मंद पड़ता है।
(ix) अपराधियों एवं डकैतों के छुपने के प्राकृतिक स्थानों में वृद्धि जिस कारण अपराध एवं असामाजिक गतिविधियां बढ़ जाती हैं।
(x) निम्नीकृत भूमि (degraded land) को पुनः अर्जित करने का कार्य सरकारी राजस्व को हानि पहुंचाता है।

विभिन्न प्रकारों की व्यर्थ भूमि और निम्नीकृत मृदाओं को पुन: अर्जित करने की कोई एकरूप रणनीति (uniform strategy) नहीं है। इस कार्य में सहायक कुछ रणनीतियां निम्न प्रकार हैं:

(i) सभी निम्नीकृत भूमि (degraded land) और मृदाओं पर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। सीमांत भूमि जो कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं हैं, को सामाजिक एवं कृषि वानिकी के अंतगर्त लाया जाना चाहिए।
(ii) निम्नीकृत मृदाओं और भू-भागों को जलविभाग (watershed) कार्यक्रमों की सहायता से पुनः अर्जित किया जा सकता है।
(iii) वर्षाजल के संग्रहण (water - harvesting) और संरक्षण को नियोजित विकास की प्रक्रिया के केन्द्र (focus) में रखा जाना चाहिए। जलविभाजक परियोजनाओं के लाभ को महत्तमीकृत करने के लिए जलसंभर (watershed) क्षेत्रों में जल हार्वेस्टिंग की छोटी-छोटी परियोजनाओं की श्रृंखला की व्यवस्था की जानी चाहिए।
(iv) मृदा संरक्षण के तकनीकों का कुशलता से कार्यान्वयन किया जाना चाहिए (जिसकी संक्षिप्त चर्चा अगले पृष्ठों में की गयी है)।

मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

भारत की एक अरब पच्चीस लाख से भी अधिक की जनसंख्या के सुपोषण को ध्यान में रखकर मृदा संसाधन के उचित उपयोग और इसके संरक्षण को शीर्षस्थ महत्व देने की आवश्यकता है।

तेज हवाओं द्वारा मृदा के ऊपरी उर्वर परत को उड़ाये जाने से बचाने के लिए गुजरात, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी मध्य प्रदेश के किसानों द्वारा अपने कृषि भूमि के किनारों पर पक्तियों में वृक्षारोपण करके मृदा संरक्षण का एक बेहतर और व्यवहार्य उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। मृदा संरक्षण के अंतगर्त मृदा अपरदन को कम करने, वृक्षारोपण, मृदाओं का तर्कसंगत उपयोग तथा वे सारे उपाय शामिल हैं, जिनसे मृदा का संपोषण होता है। मृदा संरक्षण के कुछ महत्वपूर्ण उपायों की चर्चा निम्न प्रकार है:

1. **वृक्षारोपणः** वृक्षारोपण (afforestation) मृदा अपरदन में कमी लाता है। वृक्ष न केवल मृदा के ऊपरी उर्वर परत को जल द्वारा बहाये जाने या हवा द्वारा उड़ाये जाने से रोकते हैं बल्कि वे जल के रिसाव की बेहतर व्यवस्था करके मृदा में नमी और जल-स्तर (Water Table) को भी बनाये रखने में सहायक होते हैं। नदियों, नहरों, झीलों, सड़कों एवं रेल लाइनों के किनारों तथा सरकारी/सामुदायिक भूमियों पर सामाजिक वानिकी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
2. **वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध:** वृक्षारोपण के अतिरिक्त वृक्षों की निर्बाध कटाई को नियंत्रित

करने की आवश्यकता है। चिपको आंदोलन (उत्तराखण्ड) जैसे जन-जागरूकता अभियानों द्वारा वृक्ष एवं वनों के महत्व को प्रचारित एवं प्रसारित किए जाने की आवश्यकता है।

3. **समोच्च रेखा जुताई (Contour Ploughing) और पट्टी कृषिः** पहाड़ी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में ढाल की दिशा के समरूप ऊपर नीचे जुताई नहीं की जानी चाहिए बल्कि वहां समोच्च रेखा (contour) के अनुरूप जुताई को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। समोच्च जुताई मृदा अपरदन को नियंत्रित करने का एक प्रभावी तरीका है। इसी प्रकार साधारण ढाल वाले कृषि क्षेत्रों पर कृषि कार्य के लिए खेतों की छोटी पट्टियां (strips) विकसित की जा सकती हैं ताकि मृदा अपरदन को नियंत्रित किया जा सके।
4. **बाढ़ नियंत्रण (Flood Control):** भारत में मृदा अपरदन का बाढ़ से काफी नजदीकी संबंध है। बाढ़ वर्षा काल में ही आती है। अतः वर्षा काल के जल को संगृहीत करने से लेकर अतिरिक्त जल की द्रुत निकासी पर ध्यान देना काफी उपयोगी सिद्ध होगा। नदियों को अंतः संबंधित करने जैसी माला नहर परियोजना (Garland Canal Project) या गंगा-कावेरी लिंक नहर परियोजना इस दिशा में काफी सहायक हो सकती हैं।
5. **रवीन एवं व्यर्थ भूमियों का उद्धार (Reclamation of Ravines and Badlands):** अवनालिकाओं एवं खड्डों (ravines) का उद्धार (reclamation) मृदा अपरदन की समस्या के निदान के लिए एक आवश्यक कार्य है। प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में अवनालिकाओं (gullies) के मुहानों को बंद करने, अवनालिकाओं पर बांध का निर्माण करने, अवनालिकाओं को समतल बनाने, वृक्षारोपण, पशुचारण के प्रतिबंध से जुड़ी कई योजनाओं का केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कार्यान्वयन किया जा रहा है।
6. **स्थानान्तरी कृषि (Shifting Cultivation) पर प्रतिबंध:** भारत के पूर्वोत्तर राज्यों तथा पूर्वी ओर पश्चिमी घाटों में स्थानान्तरी खेती (Shifting Cultivation) मृदा अपरदन का एक प्रमुख कारण है। इसकी जगह इन क्षेत्रों में वेदिका कृषि (terrace cultivation) को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। स्थानान्तरी कृषि को नियंत्रित करने संबंधी एक योजना सातों ही पूर्वोत्तर राज्यों में प्रारंभ की गयी है। यह एक लाभोन्मुख योजना है जिसके अंतर्गत झूमिया (स्थानान्तरी कृषक) को पुनः स्थापित किया जाता है। इस योजना को देश के अन्य प्रभावित क्षेत्रों में विस्तार किए जाने की आवश्यकता है ताकि आने वाले समय में इस कृषि विधि को स्थायी कृषि में स्थानांतरित किया जा सके।
7. **दीर्घ परती भूमि पुनः स्थापना (Restoration of Long-Fallow):** भारत में परती भूमि (fallow land) का क्षेत्र लगभग 96 लाख हेक्टेयर है। दीर्घ परती भूमि (long fallow) मुख्यतया आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र गुजरात, राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में विद्यमान हैं। इन्हें कृषि कार्यों, चारागाहों और फलोद्यानों के रूप में पुनः स्थापित (restoration) करने की आवश्यकता है ताकि यहां होने वाले निर्बाध जल और वायु अपरदन की प्रक्रियाओं को रोका जा सके।
8. **लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का उद्धार (Reclamation of Saline and Alkaline Soils) :** भारत में लवणीयता और क्षारीयता से समस्याग्रस्त क्षेत्र 80 लाख हेक्टेयर से भी अधिक है। ऐसे भू-भागों का राज्यवार वितरण तालिका 6.4 में दर्शाया गया है। इस तालिका के

अध्ययन से पता चलता है कि लवणीयता से प्रभावित सबसे अधिक भूमि 12.95 लाख हेक्टर उत्तर प्रदेश में है, जिसके बाद पंजाब, गुजरात, प. बंगाल एंव राजस्थान का नम्बर आता है।

इस प्रकार की भूमि का उद्धार (reclamation) आवश्यक है। लवणों से प्रभावित मृदाओं के उद्धार में गोबर (cow- dung) तथा जिप्सम का प्रयोग काफी उपयोगी है।

9. मृदा संरक्षण के अन्य उपाय (Other Measures) : भारत सरकार द्वारा देश की नियोजित प्रक्रिया में प्रारंभ से ही मृदा अपरदन को रोकने का प्रयास किया जाता रहा है। मृदा अपरदन को रोककर मृदा के संरक्षण की दिशा में निम्न उपाय काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं:

(i) बाढ़ एवं मृदा अपरदन पर नियंत्रण के उद्देश्य से सहायक नदियों पर उनके ऊपरी भागों में छोटे-छोटे बांधों (dams) का निर्माण।

(ii) नहरों से होने वाले जल रिसाव को रोकने के लिए नहरों का अस्तरण (lining) ताकि निम्न भागों में जलमग्नता (Water logging) को रोका जा सके।

(iii) सतही और ऊर्ध्वाधर अपवाह तंत्र में सुधार करके जलमग्नता (water-logging) की समस्या का निदान करना।

(iv) शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क प्रदेशों पवनरोधकों (windbreaks) एवं आश्रय पट्टियों (shelter belts) का निर्माण ताकि वायु अपरदन की समस्या को नियंत्रित किया जा सके।

(v) जैविक (organic) उर्वरकों एवं वानस्पतिक खाद (compost manure) के उपयोग में वृद्धि करना।

(vi) गोबर एवं हरित खादों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाना।

(vii) मानव अवशेषों (wastes) एवं शहरी कचरों को खाद में परिवर्तित करना।

(viii) वैज्ञानिक फसल चक्र पर ध्यान देना।

(ix) अवनालिकाओं की भराई तथा ढालों पर वेदिकाओं (terraces) का निर्माण करना।

(x) रेवीन (ravines) का समतलीकरण एवं ढालों पर वृक्षारोपण एवं घासरोपण करना।

(xi) स्थानान्तरी कृषि पर नियंत्रण लगाना तथा 'झूम' भूमि (Jhum land) को स्थायी कृषि में स्थानांतरित करना।

(xii) निम्नीकृत मृदाओं पर वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करना।

(xiii) सतत् कृषि (sustainable agriculture) की तकनीक को अपनाना।

(xiv) निम्नीकृत मृदाओं वाले प्रदेशों में जनता को सेमीनार, संगोष्ठी, सम्मेलनों एवं कार्यशालाओं के माध्यमों से मृदा अपरदन के प्रतिकूल प्रभावों एवं मृदा संरक्षण की आवश्यकता के प्रति शिक्षित करना।